सौन्दर्य बोध – एक दार्शनिक विमर्श

पीयूष मिश्र

शोधछात्र–संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद
Email-piyushmishra38@gmail.com

वैदिक काल से ही भारतीय मनीषियों के चेतना की अनुभूतियों का विषय सौन्दर्य तत्व रहा है। सौन्दर्य हेतु अन्य शब्दों का प्रयोग व्यवहार में होता है जैसे– सुन्दर रूप, चारू, रूचिर, प्रिय, भद्र, मधुर, श्रिय, इत्यादि। जो चित्त को द्रवित कर दे वही सौन्दर्य है।[1] वस्तु दृश्य, पदार्थ, व्यक्ति, इत्यादि को देखकर मानव मस्तिष्क में भिन्न–भिन्न विचार उत्पन्न होते हैं, जिससे सौन्दर्यानुभूति होती है। सौन्दर्य का स्वरूप ऐन्द्रिय है और अतीन्द्रित भी। मूलतः यह आर्कषण प्रधान है, जो मानव–जाति को अपनी ओर अनायास ही आकर्षित करती है। वस्तु रूप के अतिरिक्त सौन्दर्य देखने वाली दृष्टि में भी निहित होती है। मनुष्य को जिस वस्तु के दर्शन से, स्पर्श से आनन्द की अनुभूति होती है उसे वह सौन्दर्य नाम की संज्ञा से अभिहित कर देता है। किसी सुन्दर पदार्थ को देखने के उपरान्त मानव चक्षु आश्चर्य चकित हो जाते हैं, जो हृदय को परम आनन्द की अनुभूति करा देते हैं यही सौन्दर्य की सत्ता का आभास है। सौन्दर्य बोध चाहे प्राकृतिक उपदानों से उपस्थित हो, कला के विषय से हो, साहित्य या संगीत से हो, वस्तुरूप दृश्य से हो, उनमें एक विशिष्ट जातीय साम्यता मूलतः अनुस्यूत ही रहती है। सौन्दर्य बोध एक मूल्यपरक चिन्तनात्मक अवधारणा है जो आत्म साक्षात्कार से उत्पन्न होकर अनुभव, विचार एवं अभिव्यक्ति पर अवलम्बित् होती है। वाह्य रूप सत्य वस्तुतः एक विचार है और सौन्दर्य जड़ता में विचार की सृष्टि करता हुआ अन्ततः आध्यात्मीकरण की प्रक्रिया में समाविष्ट हो जाता है। सौन्दर्य मात्र कल्पना नहीं बल्कि जीवन एवं जगत् के सत्य का स्पष्ट प्रकटीकरण है।

प्रस्थानत्रयी ग्रन्थों में अग्रणी उपनिषद् वाड़मय को अध्यात्म एवं दर्शन का अद्वितीय स्रोत माना गया है। इसका मूल प्रतिपाद्य विषय है आधत्मिक तथा दार्शनिक चिन्तन। लेकिन इस चिन्तन का अनुभव शून्य में तो किया नहीं जा सकता। तत्वज्ञानी ऋषिगण हो, मानवजीवन तो इहलौकिकता में निबद्ध है। एक के बिना दूसरे की कैसी अवधारणा? वैदिक ऋषियों की भाँति दार्शनिक चिन्तक भी सौन्दर्य चेतना से शून्य नहीं थे। उसके द्वारा प्रचलित दार्शनिक सिद्धान्तों में कही स्फुट तो कहीं अस्फुट रूप से सौन्दर्य की विवेचना प्राप्त होती है। आध्यात्मिक चिन्तन में सौन्दर्य को नाद, रस तथा वस्तुब्रह्म के रूप में जानते हैं। उपनिषदों की अवधारणा है कि चराचर जगत् भी एक प्रकार की कला का परिणाम है, जिसमें सौन्दर्य ही सौन्दर्य व्याप्त है[1] इस दृश्य जगत् रूपी कलाकृति को देखकर इसके

Scanned with CamScanner

कुशल कृतिकार का अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है, जिसने अपनी इस कृति में कितने भिन्न–भिन्न रूपों के अलौकिक रंग भरे हैं। सम्पूर्ण चराचर की रचना करने वाले परमेश्वर ने विचार किया कि ''मैं ब्रह्माण्ड की रचना करना चाहता हूँ उसमें ऐसा कौन सा तत्व डाला जाए कि जिसके न रहने पर मै स्वयं भी उसमें न रहूँ अर्थात् मेरी सत्ता स्पष्ट रूप से व्यक्त न रहे और जिसके रहने पर मेरी सत्ता की स्पष्ट प्रतीति होती रहे।[2] वह परम ब्रह्म अपनी चेतना को समस्त जागतिक उपादानों में समाहित कर उसे अत्यन्त आर्कषक एवं सुन्दर बना दिया है। संसार रूपी विचित्र रचना को आश्चर्यपूर्वक देखकर मनुष्य भौतिकता से परे परमेश्वर की अपनी प्रज्ञा चक्षु से साक्षात्कार करता है।[3]

विस्मयात्मक जागतिक सौन्दर्य के प्रत्यक्ष होने पर दिव्य शक्ति रूपी कर्ता का ज्ञान स्वतः हो जाता है। जो सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप, सर्वज्ञ, कारण तत्व पुरूषोतम यहाँ इस पृथ्वी लोक में है वहीं वहाँ परलोक में भी है। परमात्मा अखिल ब्रह्माण्ड में परिव्यक्त है। परम पद ब्रह्मा परमेश्वर अपनी शक्ति के सहित नाना रूपों में प्रकट है और यह सारा जगत् बाहर–भीतर उन एक परमात्मा से ही व्याप्त होने के कारण उन्हीं की लीला भूमि का सौन्दर्य–रूप है।[4] सौन्दर्यानुभूति आलम्बन के बिना सम्भव नहीं है। ये सकल सांसारिक अवयव आलम्बन के ही आधार हैं जो मनुष्य को अतीन्द्रिय सौन्दर्य बोध की ओर प्रवृत्त करते हैं। अनुभूतिगम्य् सत्–तत्व, सौन्दर्य का रूप धारण करके हमारें अन्तः करण को आनन्दित करता है। परमसत्य सृष्टि का मूल है और मानवों का परम उपास्य है। उसके आभास से ही दृष्ट जगत् का सौन्दर्य सतत् आभासित है। चन्द्रमा तारागण, सूर्य, अग्नि इत्यादि जगत् में जो भी प्रकाशशील तत्व हैं वे सभी उस परम प्रकाश रूप परमात्मा की प्रकाश शक्ति के किसी अंश को पाकर ही प्रकाशित होते हैं। इस तरह सम्पूर्ण जगत् उन जगत आत्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित होकर अपनी सौन्दर्य की सुन्दरता को प्रसारित कर रहा है।[5] इसीलिए उसे ज्येतिषां ज्योतिः कहा गया है।[6] ''अम्बरात्नधृते'' अर्थात् पृथ्वी से लेकर आकाश पर्यन्त समस्त विकारों को धारण कर वह परमतत्व सारी प्राकृतिक चेतना को सुन्दरता से अभिभूत कर दिया।[7] पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मनु, बुद्धि और अहंकार–इन आठ प्रकार की अपरा प्रकृति को धारण करने वाला जीव रूप चेतन तत्व निखिल का अधिष्ठान है।[8] चक्षु–श्रोत्रादि इन्दियों एवं आदित्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवताओं की चेष्टा इसी प्रकाश रूप तत्व के अधीन होती है।[9] जगत् की यथार्थता का ज्ञान ही सत्य को जानता है। उस सत्य से सर्वत्र परिपूर्णता है तथा इसी परिपूर्णता में वैचित्र्य है जो सौन्दर्य को प्रकट करता है। यही पूर्ण सत्य शिव है तथा शिव ही सुन्दर है। यही एकीभूत त्रिपुटि ''सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'' के रूप में आनन्द धनराशि है। सम्पर्ण चराचर में व्याप्त सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, औषधि, रसादि सभी उस 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' स्वरूप वाले परमेश्वर के ही प्रतीकात्मक उपादान है।[10] उसी विराट पुरूष की कृपा से इन सभी में सामर्थ्य का संचार होता है। उस निराकार ब्रह्म का प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला जगत् उस विराट पुरूष का साकार रूप है।[11] अग्नि द्युलोक ही मानों उस विराट परमेश्वर का मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनो नेत्र हैं, समस्त दिशाएं कान है, नाना छन्द और ऋचाओं में

Scanned with CamScanner

विस्तृत चारों वेद वाणी है, वायु प्राण है, सम्पूर्ण जगत् ह्यदय है, पृथ्वी मानो पैर है। यही परमेश्वर तो समस्त प्राणियों के अन्तर्यामी परमात्मा है।[12] अपने अन्तर्यामी का प्राणभूत ऋत विभिन्न आकारों में व्यंजित होता हुआ दृश्य–विषय रूपी सौन्दर्य को धारण करता हुआ ज्योतिर्मय सा शोभित हो रहा है। वहीं परमात्मा सारे लौकिक उपादानों में अपनी माया शक्ति से अनेकानेक रूपों में समाविष्ट हो अपनी ही अद्वितीय सुन्दरता का प्राकट्य है।[13] खं अर्थात् आकाश के रूप में परमात्मा अखिल विश्व को आच्छादित किए हुए हैं। उसी की शक्ति से वाणी सामर्थ्यवान होकर मुखरित होती हुई जगत् व्यवहार का कारण बनती है। यहॉ परामात्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। मनुष्य की शरीर रचना उस परमतत्व की ऐसी कृति है, जिसकों देखकर देवतागण भी आह्लादित होते है। सम्पूर्ण जागतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसी की लीला की सुन्दरता से मुमुक्षु–तत्वज्ञानी परमानन्द की अनुभूति करते हुए कहते है कि –

तेरी ही छवि देख रहा हूँ प्रस्तर, तरुवर, कानन में।
तेरे सारे रंग समाहित जगत् रुप इस उपवन में।।

परमतत्व रसरूप है, इसीलिए जब जीव ब्रह्मानुभव करता है तब वह परमानन्दित होता है। परमात्मा में ही वास्तविक आनन्द, रस तथा सौन्दर्य है। जब सत्, चित् आनन्द स्वरूप एकमात्र परमात्मा ही है तो दूसरा कौन आनन्द दे सकता है। समस्त रसों का आनन्द लेने वाला भी वही रसराज है। अखिल विश्व सौन्दर्य के मूल में रस है और इस रस का मूलाधार वह परमेश्वर ही है।[14] उस पूर्णतत्व से उद्भूत होने के कारण इस जगत् में भी पूर्णता का दर्शन होता है। उसके द्वारा चित्रित इस समष्टि सृष्टि रूपी कला चित्रण का प्रत्येक चित्र पूर्ण सुन्दरता का उन्नयक है।[15] अहम् ब्रह्मास्मि, सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, तत्वमसि ये सभी आप्त वाक्य उस सच्चिदानन्द स्वरूप वाले सौन्दर्यागार की ही सुन्दरता भान कराते हें। ब्रह्म ज्ञान का आयतन सत्य ही है।[16] सत्य ही ब्रह्म का स्वरूप है[17] जो सत् तत्त्व है वह तू ही है, जब व्यक्ति सबकी आत्मा की सुन्दरता में अपनी आत्मा तथा स्वात्मा के सौन्दर्य में समस्त भूतों को देखता है तब वह स्वयं ब्रह्म ज्ञानी की श्रेणी में आ जाता है। वह निर्णीत ज्ञान कर लेता है कि यह जो कुछ भी कलात्मक स्वरूप दृष्टिरूप है वह सब निश्चित रूप से ब्रह्म ही है।[18] इस प्रकार उपनिषदों में साक्षात् कामधेनु हैं जिनसे निःसृत ब्रह्म विद्यारूपी प्य का पान कर उस परम रस रूप सौन्दर्य का अनुभव मुमुक्षु व्यक्ति करता है। सकल ब्रह्माण्डीय सौन्दर्य बोध होने के उपरान्त यह पंक्ति अन्तर्मन में स्वतः उदभूत हो जाती है कि जिसकी रचना इतनी सुन्दर वो कितना सुन्दर होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुष्ठ उणत्ति चितं यत् द्रवयति तत् सौन्दर्यम्।
2. स ईक्षांचक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तों भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति।। प्रश्न उप0 6.3
3. स जातों भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यु वावदिषिति। स एतमेव पुरूषं।

Scanned with CamScanner

4. यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह मृत्योः समृम्युमाप्नुति य इह नानेव पश्यन्ति ।। कठ0 उप0 2.1. 10
5. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतोभान्तिकुतोऽयमग्निः।
मतेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। श्रेता0 उप0 6.14
6. ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमयः परमुच्यते। गीता 13.17
7. तस्मान्न् क्षरत्यश्नुते चेत नित्य व्यापित्वाभ्यामक्षरं परमेव ब्रम्हा। ब्र0सू0शा0भा0 1.3.10
8. भूमिरापोऽनलो..... धार्यते जगत्। गीता 6.4.5
9. ज्योतिषाम् अदित्यानाम् अपि तद् ज्ञेयं ज्योति। गीताभाष्य
10. अतः समुद्रागिरयश्र सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपा।
11. ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंजजगत्यां जगत्। ई0उप0 1
12. अग्निर्मूर्धा चक्षुषीच्चन्द्रसूर्यौदिशाः दिशः श्रौत्रे वाग् विवृताच वेदा।
13. इन्द्रोमायाभिः पुरूरूप ईयते। वृहदारण्य0 उपनिषद् 2.5.19
14. रसो वैसः। रस होवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। तैत्तरीय उप0 2.7.1
15. पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्मुदच्यते। पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। वृहदारण्यक उप0 1.1
16. 'सत्यमायतनम्।' केन0उप0 4.8
17. 'सत्य ब्रहोति।' बृहदारण्यक उप0 5.4
18. 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। छान्दोग्य0 उप0 3.14.1

Scanned with CamScanner